- कोई भी पुस्तक कुछ शब्दों का संघात है। शब्दों के समूह ही तो पुस्तक कहलाते हैं। परंतु वे शब्द सजाकर इस प्रकार रखे गए होते हैं कि उनसे हम एक अर्थ पाते रहते हैं। (साहित्य का व्याकरण, ह.प्र.द्विवेदी)

- कलाकर होने के लिए ज़रूरी है कि वह चीज़ों को कस कर पकड़े और अनुभव को स्मृति में, स्मृति को अभिव्यक्ति में, तत्व को रूप में ढाले।

(कला का प्रयोजन, अर्न्स्ट फिशर)

- कहानी शायद समय की कला है; समय के साथ कहानी अनेक प्रकार की कलाएँ दिखाती है। कभी वर्षों को समेटकर एक क्षण में बाँध लेती है; कभी क्षण को खोलकर वर्षों में फैला देती है; कभी समय के दायरे को तोड़ती है तो कभी टुकड़ों को जोड़कर एक दायरा बनाती है।

(कहानी और फैंटेसी, नामवर सिंह)

साहित्य वह ज़ादू की लकड़ी है, जो पशुओं में, ईंट-पत्थरों में, पेड़-पौधों में भी विश्व की आत्मा का दर्शन करा देती है।

(जीवन में साहित्य का स्थान)

प्रेमचंद

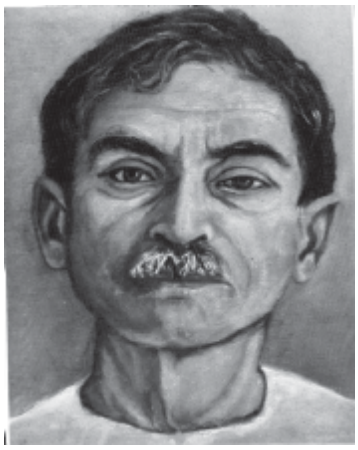

मूल नामः धनपत राय

जन्मः सन् 1880, लमही गाँव (उ.प्र.)

प्रमुख रचनाएँः सेवासदन, प्रेमाश्रम, रंगभूमि, निर्मला, कायाकल्प, गबन, कर्मभूमि, गोदान (*उपन्यास*) सोज़े वतन, मानसरोवर–आठ खंड में, गुप्त धन (*कहानी संग्रह*); कर्बला, संग्राम, प्रेम की देवी (*नाटक*); कुछ विचार, विविध प्रसंग (*निबंध-संग्रह*)

मृत्युः सन् 1936

प्रेमचंद हिंदी कथा-साहित्य के शिखर पुरुष माने जाते हैं। कथा-साहित्य के इस शिखर पुरुष का बचपन अभावों में बीता। स्कूली शिक्षा पूरी करने के बाद पारिवारिक समस्याओं के कारण जैसे-तैसे बी. ए. तक की पढ़ाई की। अंग्रेज़ी में एम.ए. करना चाहते थे, लेकिन जीवनयापन के लिए नौकरी करनी पड़ी। सरकारी नौकरी मिली भी लेकिन महात्मा गांधी के असहयोग आंदोलन में सक्रिय होने के कारण त्यागपत्र देना पड़ा। राष्ट्रीय आंदोलन से जुड़ने के बावजूद लेखन कार्य सुचारू रूप से चलता रहा। पत्नी शिवरानी देवी के साथ अंग्रेज़ों के खिलाफ़ आंदोलनों में हिस्सा लेते रहे। उनके जीवन का राजनीतिक संघर्ष उनकी रचनाओं में सामाजिक संघर्ष बनकर सामने आया जिसमें जीवन का यथार्थ और आदर्श दोनों था।

हिंदी साहित्य के इतिहास में कहानी और उपन्यास की विधा के विकास का काल-विभाजन प्रेमचंद को ही केंद्र में रखकर किया जाता रहा है (प्रेमचंद-पूर्व युग, प्रेमचंद युग, प्रेमचंदोत्तर युग)। यह प्रेमचंद के निर्विवाद महत्व का एक स्पष्ट प्रमाण है। वस्तुतः प्रेमचंद ही पहले रचनाकार हैं, जिन्होंने कहानी और उपन्यास की विधा को कल्पना और रुमानियत के धुँधलके से निकालकर यथार्थ की ठोस ज़मीन पर प्रतिष्ठित किया। यथार्थ की ज़मीन से जुड़कर कहानी किस्सागोई तक सीमित न रहकर पढ़ने-पढ़ाने की परंपरा से भी जुड़ी। इसमें उनकी हिंदुस्तानी (हिंदी-उर्दू मिश्रित) भाषा का विशेष योगदान रहा। उनके यहाँ हिंदुस्तानी भाषा अपने पूरे ठाट-बाट और जातीय स्वरूप के साथ आई है।

उनका आरंभिक कथा-साहित्य कल्पना, संयोग और रुमानियत के ताने-बाने से बुना गया है। लेकिन एक कथाकार के रूप में उन्होंने लगातार विकास किया और ***पंच परमेश्वर*** *जैसी कहानी तथा* ***सेवासदन*** *जैसे उपन्यास के साथ सामाजिक जीवन को कहानी का आधार बनाने वाली यथार्थवादी कला के अग्रदूत के रूप में सामने आए। यथार्थवाद के भीतर भी आदर्शोन्मुख यथार्थवाद से आलोचनात्मक यथार्थवाद तक की विकास-यात्रा प्रेमचंद ने की।* ***आदर्शोन्मुख यथार्थवाद*** *स्वयं उन्हीं की गढ़ी हुई संज्ञा है। यह कहानी और उपन्यास के क्षेत्र में किए गए उनके ऐसे रचनात्मक प्रयासों पर लागू होती है, जो कटु यथार्थ का चित्रण करते हुए भी समस्याओं और अंतर्विरोधों को अंततः एक आदर्शवादी और मनोवांछित समाधान तक पहुँचा देती है।* ***सेवासदन, प्रेमाश्रम*** *आदि उपन्यास और* ***पंच परमेश्वर***, ***बड़े घर की बेटी, नमक का दारोगा*** *आदि कहानियाँ ऐसी ही हैं। बाद की उनकी रचनाओं में यह आदर्शवादी प्रवृत्ति कम होती गई है और धीरे-धीरे वे ऐसी स्थिति तक पहुँचते हैं, जहाँ कठोर वास्तविकता को प्रस्तुत करने में वे किसी तरह का समझौता नहीं करते।* ***गोदान*** *उपन्यास और* ***पूस की रात, कफ़न*** *आदि कहानियाँ इसके सुंदर उदाहरण हैं।*

*जातिप्रथा की अमानवीयता को उजागर करने वाली कई कहानियाँ प्रेमचंद ने लिखीं। **सद्गति, ठाकुर का कुआँ** जैसी कहानियाँ इस दृष्टि से उल्लेखनीय हैं। **दूध का दाम** भी इन्हीं कहानियों में से एक है। इस कहानी में समाज का जो चित्र उभरता है, वह सत्तर-अस्सी साल पहले का है। इसके बावजूद वह पुराना मालूम नहीं होता। जातिप्रथा की ऊँच-नीच और छुआछूत के मामले में हालात कुछ बदले ज़रूर हैं, पर फ़र्क इतना ज़्यादा नहीं आया है कि ऐसी कहानियाँ इतिहास का अध्याय जान पड़ने लगें। **दूध का दाम** में प्रेमचंद किसी एक कोण से जातिप्रथा की आलोचना नहीं करते। कहानी को पढ़ते हुए उन एकाधिक कोणों को देखना-समझना दिलचस्प होगा। इसके साथ-साथ प्रेमचंद की उस कला पर भी गौर किया जाना चाहिए, जिसके चलते वे नाज़ुक मुद्दों को उठाते हुए भी पाठक के अंदर उत्तेजना पैदा करने की बजाय संवेदना जगाने का काम करते हैं।*

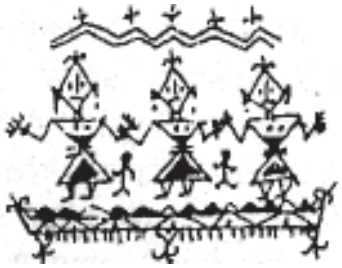

दूध का दाम

अब बड़े-बड़े शहरों में दाइयाँ, नर्सें और लेडी डॉक्टर, सभी पैदा हो गई हैं; लेकिन देहातों में जच्चेखानों पर अभी तक भंगिनों* का ही प्रभुत्व है और निकट भविष्य में इसमें कोई तब्दीली होने की आशा नहीं। बाबू महेशनाथ अपने गाँव के ज़मींदार थे, शिक्षित थे और जच्चेखानों में सुधार की आवश्यकता को मानते थे; लेकिन इसमें जो बाधाएँ थीं, उनपर कैसे विजय पाते? कोई नर्स देहात में जाने पर राज़ी न हुई और बहुत कहने-सुनने से राज़ी भी हुई, तो इतनी लंबी-चौड़ी फ़ीस माँगी कि बाबू साहब को सिर झुकाकर चले आने के सिवा और कुछ न सूझा। लेडी डॉक्टर के पास जाने की उन्हें हिम्मत न पड़ी। उसकी फ़ीस पूरी करने के लिए शायद बाबू साहब को अपनी आधी जायदाद बेचनी पड़ती; इसलिए जब तीन कन्याओं के बाद यह चौथा लड़का पैदा हुआ, तो फिर वही गूदड़ था और वही गूदड़ की बहू। बच्चे अकसर रात ही को पैदा होते हैं। एक दिन आधी रात को चपरासी ने गूदड़ के द्वार पर ऐसी हाँक लगाई कि पास-पड़ोस में भी जाग पड़ गई। लड़की न थी कि मरी आवाज़ से पुकारता।

गूदड़ के घर में इस शुभ अवसर के लिए महीनों से तैयारी हो रही थी। भय था तो यही कि फिर बेटी न हो जाए, नहीं तो वही बँधा हुआ एक रुपया और एक साड़ी मिलकर रह जाएगी। इस विषय में स्त्री-पुरुष में कितनी ही बार झगड़ा हो चुका था, शर्त लग चुकी थी। स्त्री कहती थी—अगर अबकी बेटा न हो, तो मुँह न दिखाऊँगी;

***** *ऐसे शब्दों का प्रयोग असंवैधानिक है। समाज के यथार्थ प्रतिबिंबन के लिए लेखक कई बार ऐसे शब्दों का प्रयोग साहित्य में करते रहे हैं, किंतु व्यवहार में इनका प्रयोग नहीं किया जाना चाहिए।*

हाँ-हाँ, मुँह न दिखाऊँ, सारे लच्छन बेटे के हैं। और गूदड़ कहता था—देख लेना, बेटी होगी और बीच खेत बेटी होगी। बेटा निकले तो मूँछें मुड़ा लूँ। शायद गूदड़ समझता था कि इस तरह अपनी स्त्री में पुत्र-कामना को बलवान करके वह बेटी की अवाई के लिए रास्ता साफ़ कर रहा है।

भूँगी बोली—अब मूँछ मुड़ा ले, दाढ़ीजार! कहती थी, बेटा होगा। सुनता ही न था। अपनी ही रट लगाए जाता था। मैं आप तेरी मूँछ मूड़ूँगी, खूँटी तक तो रखूँगी ही नहीं।

गूदड़ ने कहा—अच्छा, मूँड़ लेना भली मानस! मूँछें क्या फिर निकलेंगी ही नहीं?

'देखती हूँ, निकलती हैं कि नहीं!'

तीसरे दिन देख लेना, फिर ज्यों की त्यों हैं, मगर जो कुछ मिलेगा, उसमें आधा रखा लूँगा, कहे देता हूँ।

भूँगी ने अँगूठा दिखाया और अपने तीन महीने के बालक को गूदड़ के सुपुर्द कर सिपाही के साथ चल खड़ी हुई।

गूदड़ ने पुकारा—अरी! सुन तो, कहाँ भागी जाती है? मुझे भी बधाई बजाने जाना पड़ेगा। इसे कौन सँभालेगा?

भूँगी ने दूर से ही कहा—इसे वहीं धरती पर सुला देना। मैं आके दूध पिला जाऊँगी।

महेशनाथ के यहाँ अब भूँगी की खूब खातिरदारियाँ होने लगीं। सवेरे हरीरा मिलता, दोपहर को पूरियाँ और हलवा, तीसरे पहर को फिर और रात को फिर। और गूदड़ को भी भरपूर परोसा मिलता था। भूँगी अपने बच्चे को दिन-रात में एक-दो बार से ज़्यादा न पिला सकती थी। उसके लिए ऊपर के दूध का प्रबंध था। भूँगी का दूध बाबू साहब का भाग्यवान बालक पीता था। और यह सिलसिला बारहवें दिन भी न बंद हुआ। मालकिन मोटी-ताज़ी देवी थीं, पर अबकी कुछ ऐसा संयोग हुआ कि उन्हें दूध हुआ ही नहीं। तीनों लड़कियों की बार इतने इफ़रात से दूध होता था कि लड़कियों को बदहज़मी हो जाती थी। अबकी एक बूँद नहीं। भूँगी दाई भी थी और दूध-पिलाई भी।

मालकिन कहतीं–भूँगी, हमारे बच्चे को पाल दे, फिर जब तक तू जिए, बैठी खाती रहना। पाँच बीघे माफ़ी दिलवा दूँगी। नाती-पोते तक चैन करेंगे।

और भूँगी का लाड़ला ऊपर का दूध हज़म न कर सकने के कारण बार-बार उलटी करता और दिन-दिन दुबला होता जाता था।

भूँगी कहती– बहू जी, मूँड़न में चूड़े लूँगी, कहे देती हूँ।

बहू जी उत्तर देतीं– हाँ-हाँ, चूड़े लेना भाई, धमकाती क्यों है?

चाँदी के लेगी या सोने के?

'वाह बहू जी! चाँदी के चूड़े पहन के किसे मुँह दिखाऊँगी और किसकी हँसी होगी?'

'अच्छा, सोने के लेना भाई, कह तो दिया।'

'और ब्याह में कंठा लूँगी और चौधरी (गूदड़) के लिए हाथों के तोड़े।'

'वह भी लेना, भगवान वह दिन तो दिखाएँ।'

घर में मालकिन के बाद भूँगी का राज्य था। महरियाँ, महाराजिन, नौकर-चाकर सब उसका रोब मानते थे। यहाँ तक कि खुद बहू जी भी उससे दब जाती थीं। एक बार तो उसने महेशनाथ को भी डाँटा था। हँसकर टाल गए।

भूँगी का शासनकाल साल-भर से आगे न चल सका। देवताओं ने बालक के भंगिन का दूध पीने पर आपत्ति की, मोटेराम शास्त्री तो प्रायश्चित का प्रस्ताव कर बैठे। दूध तो छुड़ा दिया गया; लेकिन प्रायश्चित की बात हँसी में उड़ गई। महेशनाथ ने फटकारकर कहा–प्रायश्चित की खूब कही शास्त्री जी, कल तक उसी भंगिन का खून पीकर पला, अब उसमें छूत घुस गई। वाह रे आपका धर्म!

शास्त्री जी शिखा फटकारकर बोले–यह सत्य है, वह कल तक भंगिन का रक्त पीकर पला। माँस खाकर पला, यह भी सत्य है; लेकिन कल की बात कल थी, आज की बात आज। जगन्नाथपुरी में तो छूत-अछूत सब एक पंगत में खाते हैं, पर यहाँ

तो नहीं खा सकते। बीमारी में तो हम भी कपड़े पहने खा लेते हैं, खिचड़ी तक खा लेते हैं बाबू जी, लेकिन अच्छे हो जाने पर तो नेम का पालन करना ही पड़ता है। आपद्धर्म की बात न्यारी है।

'तो इसका यह अर्थ है कि धर्म बदलता रहता है—कभी कुछ, कभी कुछ?'

'और क्या? राजा का धर्म अलग, प्रजा का धर्म अलग, अमीर का धर्म अलग, गरीब का अलग। राजे-महाराजे जो चाहें खाएँ, जिसके साथ चाहें खाएँ, जिसके साथ चाहें शादी-ब्याह करें, उनके लिए कोई बंधन नहीं। समर्थ पुरुष हैं। बंधन तो मध्य वालों के लिए है।'

प्रायश्चित तो न हुआ; लेकिन भूँगी को गद्दी से उतरना पड़ा। हाँ, दान-दक्षिणा इतनी मिली कि वह अकेले ले न जा सकी, और सोने के चूड़े भी मिले। एक की जगह दो नई सुंदर साड़ियाँ—मामूली नैनसुख की नहीं जैसी लड़कियों की बार मिली थीं।

इसी साल प्लेग ने ज़ोर बाँधा और गूदड़ पहले ही चपेट में आ गया। भूँगी अकेली रह गई; पर गृहस्थी ज्यों-की-त्यों चलती रही। लोग ताक लगाए बैठे थे कि भूँगी अब गई। फलाँ भंगी से बातचीत हुई, फलाँ चौधरी आए, लेकिन भूँगी न कहीं आई, न कहीं गई, यहाँ तक कि पाँच साल बीत गए और उसका बालक मंगल, दुर्बल और सदा रोगी रहने पर भी, दौड़ने लगा। सुरेश के सामने पिद्दी-सा लगता था।

एक दिन भूँगी महेशनाथ के घर का परनाला साफ़ कर रही थी। महीनों से गलीज़ जमा हो रहा था। आँगन में पानी भरा रहने लगा था। परनाले में एक लंबा-मोटा बाँस डालकर ज़ोर से हिला रही थी। पूरा दाहिना हाथ परनाले के अंदर था कि एकाएक उसने चिल्लाकर हाथ बाहर निकाल लिया और उसी वक्त एक काला साँप परनाले से निकलकर भागा। लोगों ने दौड़कर उसे मार तो डाला, लेकिन भूँगी को न बचा सके। समझे, पानी का साँप है, विषैला न होगा; इसलिए पहले कुछ गफ़लत की गई। जब विष देह में फैल गया और लहरें आने लगीं, तब पता चला कि वह पानी का साँप नहीं, गेहुँवन था।

मंगल अब अनाथ था। दिन-भर महेश बाबू के द्वार पर मँडलाया करता। घर में जूठन इतना बचता था कि ऐसे-ऐसे दस-पाँच बालक पल सकते थे। खाने की कोई कमी न थी। हाँ, उसे तब बुरा ज़रूर लगता था, जब उसे मि^ी के सकोरों में ऊपर से खाना दिया जाता था। सब लोग अच्छे-अच्छे बरतनों में खाते हैं, उसके लिए मि^ी के सकोरे!

यों उसे इस भेद-भाव का बिलकुल ज्ञान न होता था, लेकिन गाँव के लड़के चिढ़ा-चिढ़ाकर उसका अपमान करते थे। कोई उसे अपने साथ खेलाता भी न था।

यहाँ तक कि जिस टाट पर वह सोता था, वह भी अछूत था। मकान के सामने एक नीम का पेड़ था। इसके नीचे मंगल का डेरा था। एक फटा-सा टाट का टुकड़ा, दो मि^ी के सकोरे और एक धोती, जो सुरेश बाबू की उतारन थी। जाड़ा, गरमी, बरसात

और हरेक मौसम में वह जगह एक-सी आरामदेह थी, और भाग्य का बली मंगल झुलसती हुई लू, गलते हुए जाड़े और मूसलाधार वर्षा में भी ज़िंदा और पहले से कहीं स्वस्थ था। बस, उसका कोई अपना था, तो गाँव का एक कुत्ता, जो अपने सहवर्गियों के जुल्म से दुखी होकर मंगल की शरण में आ पड़ा था। दोनों एक ही खाना खाते, एक ही टाट पर सोते, तबीयत भी दोनों की एक-सी थी, और दोनों एक-दूसरे के स्वभाव को जान गए थे। कभी आपस में झगड़ा न होता।

गाँव के धर्मात्मा लोग बाबू साहब की इस उदारता पर आश्चर्य करते। ठीक द्वार के सामने—पचास हाथ भी न होगा—मंगल का पड़ा रहना उन्हें सोलहों आने धर्म-विरुद्ध जान पड़ता। छि: ! यही हाल रहा, तो थोड़े ही दिनों में धर्म का अंत ही समझो। भंगी को भी भगवान ने ही रचा है, यह हम भी जानते हैं। उनके साथ हमें किसी तरह का अन्याय न करना चाहिए, यह किसे नहीं मालूम? भगवान का तो नाम ही पतितपावन है; लेकिन समाज की मर्यादा भी कोई वस्तु है! उस द्वार पर जाते हुए संकोच होता है। गाँव के मालिक हैं, जाना तो पड़ता ही है; लेकिन बस यही समझ लो कि घृणा होती है।

मंगल और टामी में गहरी छनती थी। मंगल कहता—देखो भाई टामी, ज़रा और खिसककर सोओ। आखिर मैं कहाँ लेटूँ? सारा टाट तो तुमने घेर लिया।

टामी कूँ-कूँ करता, दुम हिलाता और खिसक जाने के बदले और ऊपर चढ़ आता एवं मंगल का मुँह चाटने लगता।

शाम को वह एक बार रोज़ अपना घर देखने और थोड़ी देर रोने जाता। पहले साल फूस का छप्पर गिर पड़ा, दूसरे साल एक दीवार गिरी और अब केवल आधी-आधी दीवारें खड़ी थीं, जिनका ऊपरी भाग नोकदार हो गया था। यहीं उसे स्नेह की संपत्ति मिली थी। वही स्मृति, वही आकर्षण, वही प्यास उसे एक बार उस ऊजड़ में खींच ले जाती थी और टामी सदैव उसके साथ होता था। मंगल नोकदार दीवार पर बैठ जाता और जीवन के बीते और आने वाले स्वप्न देखने लगता और टामी बार-बार उछलकर उसकी गोद में आ बैठने की असफल चेष्टा करता।

एक दिन कई लड़के खेल रहे थे। मंगल भी पहुँचकर दूर खड़ा हो गया। या तो सुरेश को उसपर दया आई या खेलने वालों की जोड़ी पूरी न पड़ती थी, कह नहीं सकते। जो कुछ भी हो, उसने तजवीज़ की कि आज मंगल को भी खेल में शरीक कर लिया जाए। यहाँ कौन देखने आता है! सुरेश ने पूछा–क्यों रे मंगल, खेलेगा?

मंगल बोला–ना भैया, कहीं मालिक देख लें, तो मेरी चमड़ी उधेड़ दी जाए। तुम्हें क्या, तुम तो अलग हो जाओगे।

सुरेश ने कहा–तो यहाँ कौन आता है देखने बे? चल, हमलोग सवार-सवार खेलेंगे। तू घोड़ा बनेगा, हमलोग तेरे ऊपर सवारी करके दौड़ाएँगे।

मंगल ने शंका की–मैं बराबर घोड़ा ही रहूँगा कि सवारी भी करूँगा? यह बता दो।

यह प्रश्न टेढ़ा था। किसी ने इसपर विचार न किया था। सुरेश ने एक क्षण विचार करके कहा–तुझे कौन अपनी पीठ पर बिठाएगा, सोच, आखिर तू भंगी है कि नहीं।

मंगल भी कड़ा हो गया। बोला–मैं कब कहता हूँ कि मैं भंगी नहीं हूँ, लेकिन तुम्हें मेरी ही माँ ने अपना दूध पिलाकर पाला है। जब तक मुझे भी सवारी करने को न मिलेगी, मैं घोड़ा न बनूँगा। तुमलोग बड़े चघड़ हो। आप तो मज़े से सवारी करेंगे और मैं घोड़ा ही बना रहूँगा।

सुरेश ने डाँटकर कहा– तुझे घोड़ा बनना पड़ेगा और मंगल को पकड़ने दौड़ा। मंगल भागा। सुरेश ने दौड़ाया। मंगल ने कदम और तेज़ किया। सुरेश ने भी ज़ोर लगाया; मगर बहुत खा-खाकर थल-थल हो गया था और दौड़ने में उसकी साँस फूलने लगती थी।

आखिर उसने रुककर कहा–'आकर घोड़ा बनो मंगल, नहीं तो कभी पा जाऊँगा, तो बुरी तरह पीटूँगा।'

'तुम्हें भी घोड़ा बनना पड़ेगा।'

'अच्छा, हम भी बन जाएँगे।'

'तुम पीछे से निकल जाओगे। पहले तुम घोड़ा बन जाओ। मैं सवारी कर लूँ, फिर मैं बनूँगा।'

सुरेश ने सचमुच चकमा देना चाहा था। मंगल का यह मुतालबा सुनकर साथियों से बोला–देखते हो इसकी बदमाशी, भंगी है न!

तीनों ने मंगल को घेर लिया और उसे ज़बरदस्ती घोड़ा बना दिया। सुरेश ने चटपट उसकी पीठ पर आसन जमा लिया और टिकटिक करके बोला–चल घोड़े, चल!

मंगल कुछ दूर तक तो चला, लेकिन उस बोझ से उसकी कमर टूटी जाती थी। उसने धीरे से पीठ सिकोड़ी और सुरेश की रान के नीचे से सरक गया। सुरेश महोदय लद से गिर पड़े और भोंपू बजाने लगे।

माँ ने सुना, सुरेश कहीं रो रहा है। सुरेश कहीं रोए, तो उनके तेज़ कानों में ज़रूर भनक पड़ जाती थी और उसका रोना भी बिलकुल निराला होता था, जैसे छोटी लाइन के इंजन की आवाज़।

महरी से बोली– देख तो, सुरेश–कहीं रो रहा है, पूछ तो किसने मारा है।

इतने में सुरेश खुद आँखें मलता हुआ आया। उसे जब रोने का अवसर मिलता था, तो माँ के पास फ़रियाद लेकर ज़रूर आता था। माँ मिठाई या मेवे देकर आँसू पोंछ देती थी। आप थे आठ साल के; मगर थे बिलकुल गावदी। हद से ज़्यादा प्यार ने उसकी बुद्धि के साथ वही किया था, जो हद से ज़्यादा भोजन ने उसकी देह के साथ।

माँ ने पूछा–क्यों रोता है सुरेश, किसने मारा?

सुरेश ने रोकर कहा–मंगल ने छू दिया।

माँ को विश्वास न आया। मंगल इतना निरीह था कि उससे किसी तरह की शरारत की शंका न होती थी, लेकिन जब सुरेश कसमें खाने लगा, तो विश्वास करना लाज़िम हो गया। मंगल को बुलाकर डाँटा–क्यों रे मंगल, अब तुझे बदमाशी सूझने लगी। मैंने तुझसे कहा था, सुरेश को कभी मत छूना, याद है कि नहीं, बोल।

मंगल ने दबी आवाज़ से कहा–याद क्यों नहीं है।

'तो फिर तूने उसे क्यों छुआ?'

'मैंने नहीं छुआ।'

'तूने नहीं छुआ, तो वह रोता क्यों था?'

'गिर पड़े, इससे रोने लगे।'

चोरी और सीनाज़ोरी! देवी जी दाँत पीसकर रह गईं। मारती तो उसी दम स्नान करना पड़ता। छड़ी तो हाथ में लेनी ही पड़ती और छूत का विद्युत-प्रवाह इस छड़ी के रास्ते उनकी देह में पैवस्त हो जाता, इसलिए जहाँ तक गालियाँ दे सकीं, दीं और हुक्म दिया कि अभी-अभी यहाँ से निकल जा। फिर जो इस द्वार पर तेरी सूरत नज़र आई, तो खून ही पी जाऊँगी। मुफ़्त की रोटियाँ खा-खाकर शरारत सूझती है, आदि।

मंगल में गैरत तो क्या थी; हाँ, डर था। चुपके से अपने सकोरे उठाए, टाट का टुकड़ा बगल में दबाया, धोती कंधे पर रखी और रोता हुआ वहाँ से चल पड़ा। अब वह यहाँ कभी न आएगा। यही तो होगा कि भूखों मर जाएगा। क्या हरज है! इस तरह जीने से फ़ायदा ही क्या? गाँव में उसके लिए और कहाँ ठिकाना था? भंगी को कौन पनाह देता? उसी खंडहर की ओर चला, जहाँ भले दिनों की स्मृतियाँ उसके आँसू पोंछ सकती थीं, और खूब फूट-फूटकर रोया। उस क्षण टामी भी उसे ढूँढ़ता हुआ आ पहुँचा और दोनों फिर अपनी व्यथा भूल गए।

लेकिन ज्यों-ज्यों दिन का प्रकाश क्षीण होता जाता था, मंगल की ग्लानि भी गायब होती जाती थी। बचपन की बेचैन करने वाली भूख देह का रक्त पी-पीकर और भी बलवान होती जाती थी। आँखें बार-बार सकोरों की ओर उठ जातीं, वहाँ अब तक सुरेश की जूठी मिठाइयाँ मिल गई होतीं। यहाँ क्या धूल फाँके?

उसने टामी से सलाह की—खाओगे क्या टामी? मैं तो भूखा लेट रहूँगा।

टामी ने कूँ-कूँ करके शायद कहा—इस तरह का अपमान तो ज़िंदगीभर सहना है। यों हिम्मत हारोगे, तो कैसे काम चलेगा? मुझे देखो न, कभी किसी ने डंडा मारा, चिल्ला उठा, फिर ज़रा देर बाद दुम हिलाता हुआ उसके पास जा पहुँचा। हम-तुम दोनों इसीलिए बने हैं भाई!

मंगल ने कहा—तो तुम जाओ। जो कुछ मिले खा लो, मेरी परवाह न करो।

टामी ने अपनी श्वान-भाषा में कहा—अकेला नहीं जाता, तुम्हें साथ लेकर चलूँगा।

'मैं नहीं जाता।'

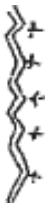

'तो मैं भी नहीं जाता।'

'भूखों मर जाओगे।'

'तो क्या तुम जीते रहोगे?'

'मेरा कौन बैठा है, जो रोएगा।'

'यहाँ भी वही हाल है भाई, क्वार में जिस कुतिया से प्रेम किया था, उसने बेवफ़ाई की और अब कल्लू के साथ है। खैरियत यही हुई कि अपने बच्चे लेती गई, नहीं तो मेरी जान गाढ़े में पड़ जाती। पाँच-पाँच बच्चों को कौन पालता?'

एक क्षण के बाद भूख ने एक दूसरी युक्ति सोच निकाली। 'मालकिन हमें खोज रही होंगी, क्यों टामी?'

'और क्या? बाबू जी और सुरेश खा चुके होंगे। कहार ने उनकी थाली से जूठन निकाल दिया होगा और हमें पुकार रहा होगा।'

'बाबू जी और सुरेश दोनों की थालियों में घी खूब रहता है, और वह मीठी-मीठी चीज़—हाँ मलाई।'

'सबका सब घूरे पर डाल दिया जाएगा।'

'देखें, हमें खोजने कोई आता है?'

'खोजने कौन आएगा; क्या कोई पुरोहित हो? एक बार 'मंगल-मंगल' होगा और बस, थाली परनाले में उड़ेल दी जाएगी।'

'अच्छा तो चलो, चलें। मगर छिपा रहूँगा। अगर किसी ने मेरा नाम लेकर न पुकारा, तो मैं लौट आऊँगा। यह समझ लो।'

दोनों वहाँ से निकले और आकर महेशनाथ के द्वार पर अँधेरे में दुबककर खड़े हो गए; मगर टामी को सब्र कहाँ? वह धीरे से अंदर घुस गया। देखा, महेशनाथ और सुरेश थाली पर बैठ गए हैं। बरौठे में धीरे से बैठ गया। मगर डर था कि कोई डंडा न मार दे।

नौकरों में बातचीत हो रही थी। एक ने कहा—आज मंगलवा नहीं दिखाई देता। मालकिन ने डाँटा था, इससे भागा है साइत।

दूसरे ने जवाब दिया–अच्छा हुआ, निकाल दिया गया। सवेरे-सवेरे भंगी का मुँह देखना पड़ता था।

मंगल और अँधेरे में खिसक गया, आशा गहरे जल में डूब गई।

महेशनाथ थाली से उठ गए। नौकर हाथ धुला रहा है। अब हुक्का पीएँगे और सोएँगे। सुरेश अपनी माँ के पास बैठा कोई कहानी सुनता-सुनता सो जाएगा। गरीब मंगल की किसे चिंता है? इतनी देर हो गई, किसी ने भूल से भी न पुकारा।

कुछ देर तक वह निराश-सा वहाँ खड़ा रहा, फिर एक लंबी साँस खींचकर जाना ही चाहता था कि कहार पत्तल में थाली का जूठन ले जाता नज़र आया।

मंगल अँधेरे से निकलकर प्रकाश में आ गया। अब मन को कैसे रोके?

कहार ने कहा–अरे, तू यहाँ था? हमने समझा कि कहीं चला गया। ले, खा ले; मैं फेंकने जा रहा था।

मंगल ने दीनता से कहा–मैं तो बड़ी देर से खड़ा था।

'तो बोला क्यों नहीं?'

'मारे डर के।'

'अच्छा, ले खा ले।'

उसने पत्तल को उठाकर मंगल के फैले हुए हाथों में डाल दिया।

मंगल ने उसकी ओर ऐसी आँखों से देखा, जिनमें दीन कृतज्ञता भरी हुई थी।

टामी भी अंदर से निकल आया था। दोनों वहीं नीम के नीचे पत्तल में खाने लगे।

मंगल ने एक हाथ से टामी का सिर सहलाकर कहा–देखा, पेट की आग ऐसी होती है। यह लात की मारी हुई रोटियाँ भी न मिलतीं, तो क्या करते?

टामी ने दुम हिला दी।

'सुरेश को अम्मा ने पाला था।'

टामी ने फिर दुम हिलाई।

'लोग कहते हैं, दूध का दाम कोई नहीं चुका सकता और मुझे दूध का यह दाम मिल रहा है।'

टामी ने फिर दुम हिलाई।

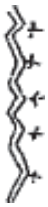

अभ्यास

पाठ के साथ

1. भूँगी की मृत्यु के बाद मंगल की क्या स्थिति हुई?
2. सुरेश और मंगल के बीच क्या झगड़ा हुआ?
3. मंगल के दुर्दिनों में उसका सबसे अच्छा मित्र कौन था? उन दोनों में क्या समानता नज़र आती है?
4. ***हद से ज़्यादा प्यार ने उसकी बुद्धि के साथ वही किया था, जो हद से ज़्यादा भोजन ने उसकी देह के साथ***– यह किसके लिए कहा गया है? इस कथन का क्या आशय है?
5. ***लोग कहते हैं कि दूध का दाम कोई नहीं चुका सकता और मुझे दूध का यह दाम मिल रहा है*** – इस कथन में क्या मर्म छिपा है? स्पष्ट कीजिए।
6. ***वाह रे आपका धर्म*** ! इस वाक्य में निहित व्यंग्य को स्पष्ट कीजिए।

पाठ के आस-पास

1. गाँवों में बच्चों के जन्म के लिए पहले क्या व्यवस्था थी और अब कैसी है?
2. इस कहानी का अंतिम दृश्य प्रेमचंद की एक अन्य प्रसिद्ध कहानी बूढ़ी काकी की याद दिलाता है। दोनों कहानियों को पढ़ें और प्रेमचंद की संवेदना दृष्टि पर चर्चा करें।
3. क्या वर्तमान समय में लड़कियों की सामाजिक स्थिति में पहले की अपेक्षा बदलाव आया है? चर्चा करें।

भाषा की बात

1. पाठ में अनेक शब्द-युग्म आए हैं, जिनकी सूची नीचे दी जा रही है। शब्द-युग्मों को क्रिया-क्रिया, संज्ञा-संज्ञा और विशेषण-विशेषण के आधार पर छाँटकर लिखिए।
   कहना-सुनना, लंबी-चौड़ी, पास-पड़ोस, स्त्री-पुरुष, नाती-पोते, दिन-रात, एक-दो, अच्छे-अच्छे, मोटी-ताज़ी, नौकर-चाकर, छूत-अछूत, दान-दक्षिणा, दस-पाँच, आधी-आधी, अभी-अभी, हम-तुम

2. नीचे दिए गए वाक्य प्रकारों के लिए एक-एक उदाहरण दिया गया है। इसी आधार पर पाठ में से चुनकर एक-एक उदाहरण और लिखिए।
   (क) निषेधवाचक- (*i*) मैं घोड़ा न बनूँगा।
   (*ii*) .....

(ख) प्रश्नवाचक- (*i*) आखिर मैं कहाँ लेटूँ?
(*ii*) .....

(ग) विस्मयादिबोधक वाक्य- (*i*) वाह रे आपका धर्म!
(*ii*) .....

शब्द-छवि

प्रभुत्व	–	शासन, अधिकार
आपद्धर्म	–	वह कर्म जिसका विधान केवल आपातकाल के लिए हो
कृतज्ञता	–	अहसान
पतितपावन	–	पापियों का कल्याण करने वाला
निरीह	–	बेचारा
मूँड़न	–	सोलह संस्कारों में से एक संस्कार (जिसमें जन्म के बाल पहली बार उस्तरे से उतारे जाते हैं)
तब्दीली	–	परिवर्तन
ज़ायदाद	–	संपत्ति
इफ़रात	–	काफ़ी मात्रा में
बदहज़मी	–	अपच
गलीज़	–	कूड़ा-कर्कट, मैला
गफ़लत	–	लापरवाही, असावधानी
तजवीज़	–	सलाह, प्रस्ताव
चघड़ (चगड़)	–	चंट, चालाक
मुतालबा	–	कथन, बात, वक्तव्य
रान	–	जाँघ
साइत	–	शायद
फ़रियाद	–	प्रार्थना, विनती
लाज़िम	–	आवश्यक
पैवस्त	–	घुला-मिला, व्याप्त
अवाई	–	आना

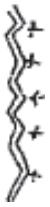

परोसा	–	थाली अथवा पत्तल आदि में लगाकर घर ले जाने के लिए दिया गया भोजन
हरीरा	–	गुड़पिस्ता-बादाम आदि सूखे मेवे से बनाया गया व्यंजन जो प्रसव के बाद स्त्री (जच्चा) को दिया जाता है
सकोरा	–	मि^ी का एक बर्तन
गेहुँवन	–	विषैले साँप की एक प्रजाति
ऊजड़	–	वीरान, निर्जन
गावदी	–	मंदबुद्धि
बरौठे	–	बैठक
चूड़े	–	कंगन
कंठा	–	गले में पहने जाने वाला एक आभूषण
बीघा	–	ज़मीन मापने की इकाई
टाट	–	जूट से बनाया गया मोटा जालनुमा कपड़ा